डा॰ रामकुमार वर्मा

# परम संत रैदास

(खण्ड काव्य)

मूल्य 1-85

ध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, अजमेर द्वारा निर्धारित पाठ्य-पुस्तक

# परम संत रैदास

## (खण्ड काव्य)

ISSAR DAS HEMA MOTWANI XIth B

HEMA MOTWANI

डॉ॰ रामकुमार वर्मा

ISSAR Das



HEMA

म हा ल क्ष्मी प्र का श न, आ ग रा-२

प्रकाशक :

**महालक्ष्मी प्रकाशन**

पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता

शहीद भगतसिंह मार्ग, आगरा–२८२ ००२

दूरभाष : ६५४१५



राजस्थान संस्करण : १९८४

मुद्रित प्रतियाँ : ३०,०००

**मूल्य : १·८५ रु०**

मुद्रक

**जयश्री प्रिण्टर्स**

२७/१६५, नॉर्थ विजयनगर कॉलोनी,

आगरा–४

# स्वस्तिका

मेरे खण्ड-काव्य लेखन-क्रम में परम संत रैदास चतुर्थ है। प्रथम दो रचनाएँ 'वीर हमीर' और 'चित्तौड़ की चिता' राष्ट्रीय दृष्टिकोण से अभिप्रेरित थीं, तीसरी 'निशीथ' प्रेम और वासना के संघर्ष की दुखान्त रचना थी और अनेक वर्षों के अन्तराल को समेट कर एक संत कवि के प्रति मेरी श्रद्धाञ्जलि है।

परम सन्त रैदास सन्त कबीर के समकालीन थे और इनका आविर्भाव काल ईस्वी सन् १३८८ से १५१८ के बीच माना जाता है। उत्तर भारत में इस समय लोदी वंश शासन कर रहा था और उस वंश की संकीर्ण धार्मिक दृष्टि संतों को अपना स्वाभाविक और सात्विक जीवन जीने की सुविधा नहीं दे रही थी।

रैदास का जन्म वाराणसी के मनडूर ग्राम में रविवार के दिन हुआ था इसलिए उनका नाम रविदास या रैदास हुआ। वे जाति से चर्मकार थे और काशी में निवास करते थे। सिखों के गुरु ग्रन्थ साहब में भी उल्लेख है कि इनका कुटुम्ब बनारस के आस-पास मरे हुए ढोरों को ढोया करता था और चमड़े का व्यवसाय करता था। किन्तु रैदास ने अपने वंश के व्यवसाय में उतनी अधिक रुचि नहीं ली जितनी संतों की सेवा में। ऐसी जन श्रुति भी है कि ये संत कबीर के सम्पर्क में आये और इन्होंने अपनी भक्ति भावना से उन्हें प्रभावित किया।

भक्त नाभादास ने जो 'भक्तमाल' नामक ग्रन्थ लिखा है उसमें उन्होंने स्वामी रामानन्द के बारह शिष्यों में रैदास का भी उल्लेख किया है।

श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो।  
अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसुरा पद्मावति नरहरि,  
पीपा भवानन्द रैदास धना सेन सुरसुरा की घरहरि।  
औरो शिष्य प्रशिष्य एक ते एक उजागर,  
विश्व मंगल आगार सर्वानन्द दशधा के आगर।

बहुत काल वपु धारि कै प्रनत जनन को पार दियो,
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो ।।

स्वामी रामानन्द के सम्पर्क में आकर उन्होंने भक्ति के महत्त्व को सर्वोप
स्थान दिया। यद्यपि वे पढ़े-लिखे नहीं थे और जाति से हीन होने के का
सत्संग करने में उन्हें विविध प्रकार की बाधायें थीं, तथापि कुछ तो उन्हे
साधुओं के मुख से भक्ति की बातें सुनकर और कुछ नैसर्गिक प्रतिभा के ब
पर प्रेम और भक्ति की ऐसी अनुभूति भरी सूक्तियाँ कहीं जो सुनते ही हृदय
स्पर्श कर लेती थीं—

प्रभुजी ! तुम चन्दन हम पानी
जाकी अँग-अँग बास समानी।
प्रभुजी तुम घन वन हम मोरा,
जैसे चितवत चन्द चकोरा।
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती,
जाकी जोति जगै दिन राती।
प्रभुजी तुम मोती हम धागा।
जैसे सोने मिलता सुहागा।
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा।
ऐसी भगति करै रैदासा।

भक्तकाल के अनुसार ये एक बड़े सिद्ध-संत थे। इनके जीवन की महत्त्व
पूर्ण घटनाओं का कोई प्रामाणिक साक्ष्य तो उपलब्ध नहीं है किन्तु इन
व्यक्तित्व के सम्बन्ध में अनेक चमत्कारिक घटनाएँ जुड़ी हैं। एक जनश्रुति
कि संत रैदास ने गंगा को समर्पित करने के लिए किसी ब्राह्मण के हाथ ए
सुपारी भेजी। गंगा ने हाथ बढ़ाकर वह सुपारी ग्रहण की और बदले
एक स्वर्ण कंकण दिया। ब्राह्मण ने वह स्वर्ण कंकड़ रैदास को न देकर पुरस्का
पाने की इच्छा से राजा को दिया। रानी ने उसे देखकर वैसे ही कंकड़
माँग की। ब्राह्मण के प्राणों पर संकट आया जान संत रैदास ने अपनी कु
के कुंड में ही गंगा का आह्वान कर दूसरा कंकण प्राप्त कर राजा को प्रदान क
दिया। राजा और रानी दोनों ही रैदास के इस प्रभाव को देखकर उन
शिष्य हुए ।

सन्त रैदास की भक्ति भावना की प्रखरता देखकर चित्तौड़ की रानी भी इनकी शिष्या हो गयी थी। अनुमान किया जाता है कि ये रानी मीराबाई ही थीं। इतिहास में चित्तौड़ की रानी का नाम झाली रानी दिया गया है। मैंने इसी नाम का उपयोग अपने खण्ड काव्य में किया है।

संस्कृत काव्यशास्त्र में खण्ड काव्य के लिए कोई विशिष्ट विवेचना नहीं है। महाकाव्य के लिए जहाँ नायक, कथावस्तु, रस, शैली सर्ग आदि का विशिष्ट विधान है, वहाँ खण्ड काव्य के लिए किसी प्रकार का कोई आग्रह नहीं है। आचार्य विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्य दर्पण के तीसरे अध्याय के १३९वें श्लोक में एक संक्षिप्त-सा संकेत दिया है—

"खण्ड काव्यं भवेत् काव्यस्य एक देशानुसारि च।"

श्लोक की इस पंक्ति में 'एक देशानुसारि' ही अर्थ पूर्ण है। 'एक देशानुसारि' का अर्थ एक विशिष्ट 'भूमिखण्ड, कथा खण्ड, चरित्र खण्ड या जीवन खण्ड से लगाया जा सकता है। और इस दृष्टि से खण्ड काव्य वह होगा जिस काव्य में किसी व्यक्ति या किसी चरित्र के किसी विशिष्ट महत्वपूर्ण अंश का उद्घाटन कर उसके सौन्दर्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया जा सके।'

परम सन्त रैदास का जीवन भक्ति की भागीरथी से पवित्र भव्य भावनाओं से भूषित था, इसलिए सरल कविता द्वारा एक खण्ड काव्य में उसे प्रस्तुत कर मैंने अपने कवि धर्म को धन्य समझा है।

—रामकुमार वर्मा

साकेत
इलाहाबाद

पुण्यमय प्राचीन गाथा, हो उठी साकार
भूमि प्यासी थी, बही भागीरथी की धार।
संत श्री रैदास की, पावन कथा का सार,
राम मेरे ! वन्दना के साथ हो स्वीकार।

दो सरस स्वर हे सरस्वति ! देवि ! परम उदार,
शब्द जैसे फूल बरसे वृक्ष हर सिंगार।
हो भले लघु किन्तु व्यापक है सुरभि संचार,
हो समर्पित देश को यह काव्य मालाकार ॥

# प्रस्तावना

आज यह गाथा पुरानी कह रहा हूँ,
रूढ़ियों को अग्नि से मैं दह रहा हूँ।
भस्म होगी शेष, जो कि अनन्य होगी,
अंग पर शिव के सजेगी धन्य होगी।

जाति-गत विद्वेष क्रम क्रम से बढ़ा है,
वर्ण-गत विष विषम नस-नस में चढ़ा है।
जो कि गुरु हैं, साथ लघु को स्वयं बाँधे,
'राम' ने भी दीर्घ लघु के 'वर्ण' साधे।

जाति का अभिमान भी अभिमान क्या है;
जो कि सरगम से रहित है, गान क्या है?
आज हरिजन का जिन्हें हैं नाम देते,
क्या उन्हें हम काम भी अभिराम देते?

वे सभी तो हैं हमारे देशवासी,
फिर उन्हीं के प्रति कहो, क्यों है घृणा सी?
वे उपेक्षित ही रहें पाषाण जैसे?
देह में उनके नहीं हैं प्राण जैसे।

फिर उन्हें क्यों दूर से ही दुरदुराते?
अलग हटते हो कि जब वे पास आते।
छूत का यह रोग उनके साथ क्यों है?
निम्न रखने में तुम्हारा हाथ क्यों है?

क्या तुम्हारी भाँति वे हँसते नहीं हैं?
क्या तुम्हारी भाँति वे बसते नहीं हैं?
क्या तुम्हारी भाँति उनका तन नहीं है?
हर्ष या दुःख से प्रभावित मन नहीं है?

क्या तुम्हारी भाँति वे चलते नहीं हैं ?
क्या दुःखों की अग्नि से जलते नहीं हैं ?
क्या तुम्हारे रक्त का रंग दूसरा है ?
भिन्न क्या उनकी जवानी या जरा है ?

सांस लेने की नहीं है भिन्न
दृष्टि तुमसे है अधिक उनकी न मैं
जब कि तुम हँसते हँसी में साथ
देश के उन्नयन में भी हाथ दे

काट कर क्यों रख दिया यह अंग अपना,
देखते उनके बिना तुम कौन सपना ?
वे तुम्हारे हैं, तुम्हारे ही रहेंगे,
सत्य में वे स्वर मिला कर सच कहेंगे।

देख लो इतिहास, अपना देश दे
पूज्य बापू का दिया उपदेश दे
भक्ति के शुभ क्षेत्र बीच प्रवेश दे
प्रेम की अनुभूति में आवेश देख

संत कितने हो गये रैदास जैसे,
सत्य पर दृढ़ हो गया विश्वास जैसे
भक्ति में ही ले रहे हैं साँस जैसे
हो गये श्रीराम के वे दास जैसे।

प्रेम पथ पर चल उन्होंने गान गा
वे सभी के थे न कोई था पर
साधना के क्षेत्र में माया मथी
काव्य में जैसे बही भागीरथी थ

# पहला सर्ग

आज क्यों चहल-पहल सभी तरफ मची हुई
पुत्र नव जयन्त हेतु एक माँ बची हुई।
जिन तरह तरंग से प्रवाह का प्रसार हो।
या कि मंजु मोह से प्रसूत पुण्य प्यार हो।

राशि में नक्षत्र, प्रकृति बीच नव बसन्त हो,
या कि गौरि-गोद में समोद एक दन्त हो।
तीर्थ भूमि में उदीयमान पुण्यकाल हो,
गीति मध्य छन्द या कि राग मध्य ताल हो।

इस प्रकार पुत्र-जन्म से कृतार्थ मां हुई,
तीस रात्रि मध्य आज एक पूर्णिमा हुई
जन्म जन्म के सुकर्म आज हैं उदित हुए
दूर-पास गाँव के समस्त जन मुदित हुए।

सूर्य का प्रकाश भेद-भाव नहीं मानता
और यह विराट् विश्व जाति नहीं जानता
धाम चर्मकार का बड़ा जमाव है यहाँ
दौड़ हैं रहे स्वजन, प्रसन्न हो जहाँ तहाँ।

नारियाँ प्रसन्न हैं, बजी अनेक थालियाँ
द्वार पर सजी हुई अनेक अन्न बालियाँ
चौक हैं पुरे हुए, कलश भरे हुए सजे
बड़ी उमंग से अनेक ढोल गहगहे बजे।

दे रहे बधाइयाँ स्वजन बड़े उछाह से,
आ रहे सभी उमंग के भरे प्रवाह-से।
पुत्र-जन्म गीत गा रही सजी सुहागिनें,
बाल-वृद्ध हैं अनेक, भीड़ में किन्हें गिनें।

'धुग्बनी' बनीं हुईं अनन्त भाग्यशालि
पुण्य पुष्प से प्रसन्न धन्य मंजु पालि
दिव्य गंध के समान पुत्र जो प्रसव कि
विश्व के विशाल कक्ष बीच रख दिया दिया

और थे पिता प्रसन्न नाम था 'रघु' पवित्र
कौन था समाज में कि जो उन्हें कहे न मित्र
मोद मे निमग्न था समस्त यह जुड़ा समाज
भूरि भाग्यवान कौन था रघु समान आज ?

भिक्षु दान से प्रसन्न, मित्र मान से प्रस
लोग पान से प्रसन्न, बाल गान थे प्रस
इस तरह प्रसन्नता-प्रवाह से दिशा भर
कंठ-कंठ गूँजते, पुकारते 'अरे' 'अर

नाचतीं परी-सदृश किशोरियाँ ममत्व की, ममता से भरी हुई
बूढ़ियाँ प्रतीक लगीं मग्न पुरातत्व की।
माँगती अनेक नेग नारियाँ उमंग से,
कंठ से नहीं परन्तु बोल बोल अंग से

जोड़ हाथ बार बार वे उठे बैठ क
थे रघु प्रसन्न यहाँ बैठ, वहाँ पैठ क
चुम्बकीय यन्त्र की सुई समान हो र
घूम सभी ओर पुत्र-कक्ष की दिशा गहे

माघ पूर्णिमा पवित्र पर्व था दिनान्त में
स्थान पुण्यमय वरुण असी समीप प्रान्त में
थे अनेक चर्मकार पास में बसे हुए
प्रेम के अटूट स्नेह-रज्जु से कसे हुए।

ग्राम था प्रसिद्ध पुण्य नाम मनडूर था
था समृद्धि-पूर और कोट से न दूर था।
हो गयीं शताब्दियाँ व्यतीत पर थली वही
धर्म चक्र की कथा श्री बुद्ध ने यहीं कही।

धर्म और नीति का यहीं हुआ निवास है,
साक्ष्य दे रहा समस्त विश्व-इतिहास है,
धन्य है प्रदेश कवि गिरिधर दास का
छन्द है प्रसिद्ध अलंकार अनुप्रास का।

बसें बिन्दु माधव जिसे सराहिं देव सबै
दरसन हू ते लागे जम-मुख मसी है
तीरथ अनादि पंच गंगा मनिकर्णकादि,
सात आवरन मध्य पुन्य रूप धंसी है।

गिरिधरदास पास भागीरथी सोभा देत,
जाकी धार तोरै आसु कर्म रूप रसी है,
ससी सम जसी असी बरना में बसी,
पाप खसी हेतु असी ऐसी लसी वारानासी है।

मंगल भरा उत्सव हुआ परशुभ दिवस रविवार था।
इसलिए सुत नाम 'रवि' सब को हुआ स्वीकार था।
रविदास या रैदास उसका नाम है संसार में।
लघु गीत में है काव्य जैसे फूल हरसिंगार में॥

# दूसरा सर्ग

## (उर्दू शैली में)

दिन हँसा तो गगन में प्रभाती हुई
आयी विहगावली गीत गाती हुई।
छा गयीं रश्मियाँ जगमगाती हुई,
थी मचली हवा मंद आती हुई।

जो सदन में खिला फूल शोभा-सन
वह दिनोदिन अधिकतर सुगन्धित बन
जो कभी शिशु बना था जननि-गोद
वह विहंसता बना बाल है मोद

वह कभी खेलता पौर के द्वार पर
था मचलता कभी फूल के हार पर,
था कभी तैरता जाह्नवी-धार पर
जा पहुँचता कभी दूसरे पार पर।

दूर से देखता मन्दिरों की छ
गुनगुनाता वही गीत जो था रट
जो बनी मूर्तियाँ थीं डगर मोड़
वह उन्हें देखता खेलना छोड़क

साधुओं के तिलक पर हँसी आ गयी
जब पिटा तो उदासी अधिक छा गयी।
किन्तु आँसू उड़े ओस-से शीघ्र ही
फिर कही बात फिर से जो पहले कही।

या किसी का कमण्डल उठा भाग
किन्तु फिर लौट कर वह क्षमा माँगत
या चिढ़ाता कभी ढोंगियों को च
पढ़ दिया मन्त्र उलटा जो उसने पढ़ा

पर उठा जैसे वह मारने के लिए
गालियों बीच फटकारने के लिए
कहा....क्या छुओगी मुझे नीच हूँ
तुम हो चन्दन—मैं गंदी पड़ी कीच हूँ।

इस तरह पंडितों से उलझता कभी
किन्तु प्यारे थे उसको दुखी जो सभी
दूर से ही उन्हें देके सुख-सान्त्वना
वह सभी दीन जन का सहारा बना।

मन्दिरों में सजी मूर्तियाँ थीं बड़ी
थी सजी कंठ में मोतियों की लड़ी,
छाप उनकी हृदय पर थी ऐसी पड़ी,
जुड़ गयी उनसे उसके हृदय की कड़ी।

वह उन्हें देखर लेख कर ध्यान से
बड़ी भक्ति से और सम्मान से
उठा भागीरथी की तरल बालुका।
बना मूर्ति उसकी, सभी से लुका....

था सजाता उन्हें कक्ष में प्रेम से
और था पूजता वह बड़े नेम से
राम-सीता कभी राम, सीता कभी
नाम लेता, समय उसको मिलता जभी।

ध्यान में या कभी प्रेम में लीन था
भान घर का या अपना उसे भी न था
देख उसकी दशा खीझती मां खड़ी,
इसको पूजा रचा की क्यों आदत पड़ी ?

आ, खिला दूँ तुझे पेट भर जो रुचे
फिर करे काम घर का बचे-या खुचे।
क्यों तू कच्ची उमर से भगत है बना,
देख, कीचड़ से तेरा है कपड़ा सना।

यह कहीं से उठा ली है माला
है लगा दी प्रभू-नाम की है
यह न सुनता न मेरी कभी बू
भक्ति करता है भगवान के जूझ

उठ, नहीं तो पिता से कहूँगी कि ये,
ध्यान करता सदा बन्द आँखें किये।
जो न घर देखता न, घर-काम भी
जैसे पा जायगा मुक्ति पल में अभी।

बात सुनते पिता भी वहीं आ
मूर्ति के सामने पुत्र को पा
झट लगा कर तमाचा तभी गाल
यों कहा—-घूमता क्यों इधर या उध

बड़ा भक्त बनता है माला लिये
न होगा कोई काम तेरे किये।
अधूरा पड़ा काम घर का यहाँ
बना भक्त बैठा जहाँ का तहाँ?

अगर तूने माला उठायी
मिला दूंगा धरती में तुझको
भला आदमी बन. मेरे माथ
चलन अपना पाजी! अभी से बद

सिखाऊँगा तुझको सभी काम मैं
कि जिसमें कमाऊँ बड़े दाम मैं
जो है, काम कुल का उसे तू करे
न कह 'राम सीता' न 'किसना' 'हरे'।

ये रांपी, ये पिनचिस, ये है सामदान,
ये चमड़ा पड़ा है, सभी है सामान
बना पनहीं संझा तलक ये बने
तुझे दूंगा खाने भुने जो चने।

चला बेटा उठ करके रोता हुआ,
न भोजन, न पानी, न कुछ भी छुआ,
पिता ने कहा जो उसे मान फिर
लगा काम करने झुका अपना सिर।

उठाता था चमड़ा, सही जान के
फिर बनाता था पनहीं बड़े ध्यान से
इस तरह उसकी प्रतिदिन की चर्या हुई,
निखरता रहा, ज्यों धुनी हो रूई।

# तीसरा सर्ग

(१)

ध्यान से पिता के घर पनहीं बनाते रहे,
चिन्ता भी उन्हें न रही भूख और प्यास की
भाँति-भाँति की कलाएँ बार-बार सीखकर,
बान सी पड़ी थी उन्हें नित्य ही अभ्यास की
एक ग्रास खाया फिर काम में ही डूब गये,
सुधि भी उन्हें न रही फिर अन्य ग्रास की
लोग वाह-वाह कह उठते थे बार-बार,
देख-देख कला चर्मकार रविदास की

( २ )

किन्तु बीच-बीच में वे राम राम सीताराम,
कहते थे बालपने के जो संस्कार थे
बड़े-बड़े लोग भक्ति उनकी सराहते थे,
जाति से भले ही रविदास चर्मकार थे
उनके समीप जो भी आके कभी बैठता था,
उससे सदैव प्रेम के ही व्यवहार थे
काशी बीच उनकी बनायी पनहीं ही चली,
किन्तु नम्रता के मानों पूर्ण अवतार थे

( ३ )

चमड़ा लिया था, समझा था उसे माया मोह,
प्रेम की प्रवृत्ति जैसी ठोक देते कील थे
जल में भिगोते जब सूत के अनेक गुच्छ,
जानते थे जैसे ये अनेक गुणशील थे
पानी की कठौती जैसा अपना शरीर ही था,
नाना रूप और वर्ण गोर या कि नील थे
तीखी नोक वाले सूजे उनके समीप जो थे,
उन्हें जान लेते ग्राम ब्रज के करील थे

( ४ )

यौवन के द्वार पर जब रविदास आये,
व्याह उनका परम्परानुसार होना था।
रात खिली मानों मिली स्वप्न भरी रम्य रश्मि,
और दिन उगता तो भान होता सोना था।
पिता ने उमंग भरे मन से प्रबन्ध किये,
शोभा से सजा था हर एक कोना-कोना था।
ऐसी वधू आयी उस घर में सुहाग भरी,
प्रेम का सा टोना था सलोना नाम 'लोना' था।

( ५ )

मंगल विवाह से गृहस्थ हुए रविदास,
किन्तु रही पूरी भक्ति जीवन के ढंग में।
पत्नी साथ रहती थी किन्तु वे निरन्तर ही,
पूर्ण सुख पाते रहे भक्ति की तरंग में।
नित्य प्रति धर्म की सुनाते रस-पूर्ण कथा,
ढाल लिया पत्नी को भी अपने ही रंग में।
होना था वही जो हुआ कोना-कोना गूंजता था,
लोना के समेत नाम कीर्तन प्रसंग में।

( ६ )

जैसे-जैसे पनहीं बनाते रविदास गये,
वैसे-वैसे लोग लेने हेतु वहीं आते थे।
ऐसी कुछ बात पद-त्राण के बनाने में थी,
जैसी लोग चाहते थे वैसी उसे पाते थे।
अन्य चर्मकार जो थे, उनको जलन होती,
ग्राहकों को झूठी बात बना बहकाते थे।
किन्तु रविदास की प्रवृत्ति कुछ ऐसी बनी,
निन्दा भरे शब्दों में भी ब्रह्म सुख पाते थे।

( ७ )

किसी साधु संत को वे देखते थे नंगे पैर,
उसको बुलाके पद-त्राण पहिनाते हैं।
मूल्य नहीं लेते और मुस्कुरा के बोलते हैं,
पूर्वजन्म के हमारे नेह और नाते हैं।
मेरे पद-त्राण धन्य होंगे यदि आप इन्हें,
पैरों में स्थान देकर तीर्थ हेतु जाते हैं।
एक मूर्ति मेरे लिए लावें सीता राम जी की,
यदि आप लौटकर इसी मार्ग आते हैं।

( ८ )

जितने बनाते हैं वे नये नये पद-त्राण
संध्याकाल बीतते वे आधे रह जाते हैं।
बिना मूल्य देते जिन्हें देखते हैं साधु संत,
वे भी मीठे-मीठे शब्द चार कह जाते हैं।
पिता देखते हैं इस भाँति व्यवसाय हानि,
कभी बोलते हैं कभी मौन सह जाते हैं।
साधुओं की निन्दा यदि पिता द्वारा होतीं कभी,
रविदास-नेत्रों से दो अश्रु वह जाते हैं।

( ९ )

सहने की सीमा जब टूटी तो पिता ने कहा....
बेटे ! इस भाँति क्या व्यवसाय किया जाता है ?
कैसे तुम साधुओं को बाँटते हो पद-त्राण
धन का अपव्यय क्यों हाय ! किया जाता है ?
देखते हो तुम समाज आज छली छद्मियों का
भोले-भाले लोगों पै अन्याय किया जाता है।
यदि यह बात रही, देखना तुम्हारे द्वारा,
भीख माँगने का ही उपाय किया जाता है।

( १० )

किन्तु और कीर्तन की गति बढ़ती ही रही,
निज व्यवसाय पर उनका न ध्यान था,
पिता और चिन्तित थे, बोले कुछ तीखे बोल,
"तेरे काम करने पर मुझे अभिमान था।"
किन्तु तूतो हो गया है भक्त काम-काज भूल
ऐसा स्वप्न में भी कभी मुझे नहीं भान था,
"पीछे घर के तू चला जो रे!" "पिता। जैसी आज्ञा,"
रविदास गये जहाँ कक्ष सुनसान था।

( ११ )

अपने एकान्त कक्ष में ही बैठ रविदास,
कभी चर्मकार कार्य करते स-हास थे।
और कभी करते थे कीर्तन सप्रेम और
ध्यान में ही लीन जैसे प्रभु के ही पास थे।
दिन दिन साधना बढ़ी थी भक्ति-भावना में,
फल-मूल छोड़ कभी करते उपवास थे,
दिन डूब जाता और रवि अस्त होता किन्तु,
तेज से प्रकाशपूर्ण भक्त रविदास थे।

(१२)

भक्ति के प्रवाह में प्रवृत्ति कुछ ऐसी जागी,
कीर्तन के स्वर मध्य काव्य का प्रवाह था,
अनायास कविता की पंक्तियाँ निकल जातीं,
शान्ति देने अन्तर में जो कुछ भी दाह था।
वर्ष पर वर्ष बीते, किसे यह ध्यान होता,
कौन यह दिन था या कौन यह माह था,
जैसे देवि शारदा को भक्ति की तरंगिनी में,
स्नान करने के हेतु उमड़ा उत्साह था।

(१३)

भक्ति गान है या यह कविता का रूप है या,
प्रभु की कृपा के हेतु प्रेम की पुकार है,
सारी इन्द्रियों का केन्द्र भक्ति पर घूम रहा,
मन रूपी वीणा पर गूँज रहा तार है।
जो भी सुनता है, वह मुग्ध होके आता पास,
दूर होता जातिगत सभी अहंकार है,
राम-नाम साधना बढ़ी है इस भाँति जैसे,
हो गया साकार ब्रह्म जो कि निराकार है।

(१४)

रविदास कक्ष के समीप हो रही है भीड़,
सभी प्रेम मग्न हुए, बही रस-धारा है,
भव-सिन्धु बीच जो बहे थे उनके समीप,
भक्त रविदास-कुटी एक ही किनारा है।
ऐसा लगता है, जग में जो पाप-पुंज जुड़े,
उन्हें आज पुण्य सैनिकों ने ललकारा है,
कहते हैं स्वर्ग तो धरा से दूर है परन्तु,
इस भक्त ने धरा पै स्वर्ग ही उतारा है।

(१५)

देखो, रविदास अति प्रेम-भाव मग्न होके,
अपना सरस गीत स्वर से सुनाते हैं,
रागिनी के सारे स्वर, उत्सुक हैं कण्ठ में आ,
और अलंकार स्वयमेव चले आते हैं।
आँखें बन्द करते हैं, श्याम पुतलियों के बीच,
राम-श्याम बार-बार आकर समाते हैं,
नाम जैसे शब्द-गुण देता रविदास को है,
सुनें संतों बीच अहा ! किस भांति गाते हैं।

अब कैसे छूटे राम, नाम रट लागी।
प्रभु जी, तुम चन्दन हम पानी,
जाकी अंग अंग बास समानी।

प्रभु जी, तुम धन बन हम मोरा,
जैसे चितवत चन्द चकोरा।

प्रभु जी, तुम दीपक हम बाती,
जाकी जोति बरै दिन राती।

प्रभु जी, तुम मोती हम धागा,
जैसे सोने मिलत सुहागा।

प्रभु जी, तुम स्वामी हम दासा,
ऐसी भगति करै रैदासा॥

## चौथा सर्ग

अपना काम सदा करते हैं,
निस्पृह सन्त भक्त रैदास।
सम्मुख हो विपत्ति पर उनके,
मन में होता कभी न त्रास।
मानें उष्ण कृपा गरमी में,
और शीत में शीतल गात,
प्रभु की कृपा बरसती रहती,
जब हो जाती है बरसात।

लोना के सम्मुख होते हैं,
पूरे करना गृह के काज,
किन्तु रैंकता इतनी घर में
रहता पूरा नहीं अनाज।
कभी कभी उपवास दिवस थे,
कभी फलों पर था आहार।
क्योंकि माँगना कभी किसी से,
था न उन्हें किंचित् स्वीकार।
बिना मूल्य ही दे देते थे,
पनहीं देख सन्त लाचार,
कैसे हो निर्वाह हमारा,
इस पर करते थे न विचार।
उनकी दीन दशा पर जैसे,
निर्मम था सारा संसार,
किन्तु आत्म सम्मान सहित ही,
रहता यह छोटा पविारर।

गीत गा रहे सौम्य संत,
रैदास लगाये प्रभु का ध्यान,
रांपी, कील, हथौड़ी बिखरी,
इधर-उधर है सब सामान।
उसी समय कुटिया पर आये,
प्रेमानन्द सन्त सुख भान,
बोले मैं प्रसन्न हूँ सुनकर,
भक्ति समेत तुम्हारा गान।

उठे शीघ्र रैदास—धन्य प्रभु,
आये हैं जो मेरे पास,
कहिए, क्या सेवा मुझसे हो,
समझें मुझको अपना दास।
अरे, दूर ही रहें, न मेरी छाया,
चरणों को छू जाय,
आप सन्त हैं और दास का,
कर्मकारिता है व्यवसाय।

फिर भीतर पुकार कर बोले—
लोना ! सुन ये संत महान्।
आये हैं, उनका कैसे हो,
इस घर में अच्छा सम्मान ?
पास हमारे क्या है ? देखो,
क्षत विक्षत हैं इनके पांव।
इनको देखा कभी न पहले,
ये आये हैं अपने गाँव।

अपना धर्म यही है लोना !
पहले करें अतिथि-सत्कार।
इनके आने से ही कितना
धन्य हुआ यह घर का द्वार।
जो मैंने गांठी है पनहीं,
कल ही इतने प्रेम समेत,
ला दे उसे, देख चरणों में
इनके लिपटी कितनी रेत ?

चरणों में पनहीं पहिना दूं,
यह सेवा कर लें स्वीकार,
चार बरस तक चल जायेगी,
चाहे घूमे सब संसार।
लोना बड़े प्रेम से लायी,
पनहीं रँगी किनारीदार,
उसमें रेशम के बूटे थे,
कढ़े हुए थे मालाकार।

बड़े प्रेम से सम्मुख रख, कर,
बोले हाथ जोड़ रैदास,
बहुत दिनों के बाद आज इस
पनहीं की पूरी है आस।
प्रभुवर ! चरण बढ़ायें अपना,
कष्ट न मानें कुछ भी आप,
इधर-उधर चलने में देखें,
छोड़ रही है कैसी छाप।

बिना मूल्य ही इसको ले लें,
इतनी मेरी सेवा जान,
आते रहें सदैव यहाँ पर,
मुझको अपना सेवक मान।
बोले प्रेमानन्द राम ने भी क्या
पहने थे पद-त्रान,
इसीलिए है तीर्थभूमि में
नंगे पद चलता सुख मान।

नहीं चाहिए कुछ भी तुमसे,
केवल तुमसे हो पहिचान,
तुमसे मिलने की इच्छा थी,
सच्चा साधक तुमको जान।
चर्मकार तुम भले रहो,
पर जाति-पाँति की मुझे न भीति,
सब समान हैं, सब मेरे हैं,
सबसे रहती मेरी प्रीति।

क्यों मुझसे ही दूर और क्यों
करते मिलने में संकोच ?
जल से जल मिलने में कैसी
बाधा ? कैसा मन में सोच ?
इसलिए तो हम आये हैं,
नाम हमारा प्रेमानन्द,
यों तो जग में भक्त बहुत हैं,
भरे हुए उनमें छल-छन्द।

बोले तब रैदास, - महाप्रभु !
मुझे न दें इतना सम्मान।
केवल चर्मकार हूँ जग का,
दास-मात्र मैं हूँ अनजान।
कहा संत ने''''दीन बनो मत,
जाति-पाँति का छोड़ो ज्ञान,
गले मिले थे केवट से भी
अपने रामचन्द्र भगवान्।

अपने वन विचरण में प्रभु ने
नहीं लगायी कुछ भी देर,
आये थे शबरी-आश्रम में
खाये उसके जूठे बेर।
जहाँ प्रेम है, स्नेहभाव है,
वहाँ नहीं है कुछ भी भेद,
जाति-पाँति में अन्तर क्या है ?
क्यों लाते हो मन में खेद।

आओ, बैठो पास, करूँगा
मैं तुमसे कुछ मन की बात।
कैसे तुमको भक्ति-भावना
की इतनी बातें है ज्ञात ?
ध्यान मग्न तुम रहते हो, फिर
चाहे दिन, चाहे हो रात,
भक्ति-भावना से रोमांचित
रहता सदा तुम्हारा गात।

बोले तब रैदास ज्ञान क्या है,
इसका तो नहीं विवेक,
चमड़े के जल से करता हूँ
मैं अपने प्रभु का अभिषेक।
केवल नाम जपा करता हूँ
यही दास की है दृढ़ टेक,
करती है गुण-गान राम का,
चलती हुई साँस प्रत्येक।

मेरे प्रभु हैं जग के भीतर....
बाहर, यह कहते हैं संत,
क्या जानूँ, मेरे इस मन में
क्यों रहते हैं कमलाकांत।
ज्ञान विवेकमयी बातें हैं
कहते शास्त्र और सब वेद,
मैं यह सब कुछ नहीं जानता,
नहीं जानता उसका भेद।

एक बात बस— मैंने कह दी
लेता हूँ प्रभू का प्रिय नाम,
क्या जानूँ किस भाँति बीत
जाते हैं मेरे आठों याम।
यही ज्ञान है, यही ध्यान है
और यही साधना का अंग,
हूँ अछूत, इसलिए दूर से
सुन लेता हूँ कथा-प्रसंग।

कहा संत ने—"इतने पर भी
तुम निर्धन हो प्रिय रैदास !
यह टूटा सा घर है, उस पर
छायी है सूखी घास।"
"जिसके धन हैं राम संतवर।
निर्धनता है उससे दूर,
टूटा-सा घर हो पर मन है
प्रेम-भावना से भरपूर॥"

संत हो गये, चकित, लगा रैदास
प्रेम का है अवतार।
बड़े स्नेह से बोले—फिर भी
देखो तो अपना घर बार।
बिना मूल्य ही दे देते हो
तुम अच्छे अच्छे पद-त्राण।
धन के बिना न घर चलता है,
कैसे बने रहेंगे प्राण ?

भूखे ही तुम रह जाते हो,
यदि न अन्न का हुआ प्रबन्ध
और न तुममें किसी भाँति है
लोभ और लालच का गन्ध
सरल दीखती है यह लोना,
कभी न तुम पर करती क्रोध
सुनता है पैसा पाने के हित
न कभी करती अनुरोध।

तुम हो इतने वीतराग-देते
न रंकता पर कुछ ध्यान
लीन भक्ति में रह कर तुम
करते रहते हो प्रभु का गान।
मैं तुम पर अति ही प्रसन्न हूँ
आया हूँ करने कल्याण,
रहे रंकता दूर उसी का
तुमको दूँगा अभी प्रमाण।

देखो, यह पारस पत्थर है,
इसको कर लो अंगीकार,
चाहे जैसा लौह खंड हो
छू कर करे स्वर्ण तैयार।
इसके द्वारा जीवनभर तुमको
न खलेगा कभी अभाव।
अर्थ भरे इस भव सागर में
तुम खे लोगे अपनी नाव।

इसे सहेजो और सदा ही
इसे रखो तुम अपने पास।
जो लोहा है, उसको सोना
तुम कर लोगे बिना प्रयास।
देखो, यह लोहे की रांपी,
पड़ी हुई चमड़े के संग
पारस के छूने से होगा
इसका रंग स्वर्ण का रंग।

ऐसा कह कर संत उठे,
पारस पत्थर को शीघ्र निकाल
छुला दिया उसको रांपी से
रांपी स्वर्ण हुई तत्काल।
जग मग जग मग रांपी से
आँगन में फैला स्वर्ण उजास,
संत प्रसन्न हुए पर इससे
खिन्न हो गए कुछ रैदास।

बोले वे कर जोड़—महाप्रभु !
पारस है न मुझे स्वीकार।
मूल्यवान हो किन्तु मुझे
लगता है यह माया का द्वार।
इसके द्वारा स्वर्ण बनेगा
वह उत्पन्न करेगा मोह।
स्वार्थ बढ़ेगा और परस्पर
इसके द्वारा होगा द्रोह।

कंचन की करतूत कष्टमय
कितनी है, यह करें विचार
भेद भाव के बीच बसा है,
एक एक जन का संसार।
यह पारस तो पत्थर ही है,
यह माया का है अवतार।
मेरे प्रभु तो रत्न सदृश हैं
दीनों से उनको है प्यार।

प्रभु समीप हैं तो माया की
महिमा होगी उनसे दूर
यदि माया समीप आयी तो
होगी प्रभु की कृपा कपूर।
मैं अपने प्रभु की सेवा में
अपना करता हूँ निर्वाह।
मेरे इस आनन्द सिन्धु में
माया की कुछ रही न चाह।

सहज साधना के सागर में
खेऊँगा माया की नाव।
इसको लेकर प्रभु के सम्मुख
क्या खेलूँ सोने का दाँव?
नहीं, आप इसको ले लें,
रख लें इसको अपने ही पास।
उसे प्रदान करें जिसको
इसके पाने का हो उल्लास।

विस्मय से विमूढ़ थे उस क्षण
संत देख रैदास-विराग
द्रवित हो गया हृदय और
मन में उमड़ा जैसे अनुराग।
बोले—जो कुछ देता हूँ फिर
उसे न लौटाता हूँ मैं संत।
इसीलिए यह पारस पत्थर तुम
रखना जीवन-पर्यन्त।

कहाँ रखूँ यह तो बतला दो
अपने घर का कोई ठौर।
रहे तुम्हारे पास सदा ही,
चुरा न पाये कोई और।
कोई संत कभी आये, हो
दुःखी और धनहीन उदास।
तो फिर इस पारस के द्वारा
दूर करोगे उसका त्रास।

अपने हित में कभी स्वर्ण का
चाहे तुम न करो उपयोग
किन्तु सधेगा इसके द्वारा
दुःखियों की सेवा का योग।
बोले तब रैदास छोड़ना ही है
यदि यह मेरे पास
तो यह छप्पर की छानी है,
इसमें रख दें कर विश्वास।

प्रेमानन्द उठे पारस को
तब छानी में रखा—स-खेद
वस्त्र-तहों में उसे छिपाया
जिससे खुले न उसका भेद।
संत चले तो प्रेम सहित
आये रैदास गेह के द्वार
लोना ने प्रणाम कर अपना
सिर भू पर टेका दो बार।

हाथ जोड़ रैदास खड़े थे
बोले वचन प्रेम के साथ
संत प्रवर, इस दीन कुटी को
आकर फिर से करें सनाथ।
संत गये, रैदास
प्रेम से उनके साथ गये कुछ दूर
उनका कर सत्संग नाचता रहा
देर तक हृदय-मयूर।

× × ×

बीते कई मास, फिर से
रैदास समीप फिरे वे संत।
देखा लीन हो रहे हैं,
रैदास भक्ति रस में अत्यन्त।
वैसा ही घर है, छप्पर है,
वही रंकता का साम्राज्य।
जैसे उनके हेतु हो गया
वैभव का आकर्षण त्याज्य।

लगता है कि उन्होंने अपने
पारस का न किया उपयोग,
उनके लिए व्यर्थ लगते हैं
इस जग के सारे सुख भोग।
लोना सहित प्रेम से स्वागत
हित आगे आये रैदास
उनको आसन देकर पूछा
कुशल वृत्त आ उनके पास।

बोले प्रेमानन्द कहाँ है पारस
जो था किया प्रदान,
ज्ञात हो रहा उसके प्रति
मन में न तुम्हारे आया ध्यान।
बोले तब रैदास ! महाप्रभु !
रखा हुआ है उसी प्रकार
वस्त्र बीच इस छानी में ही
चाहें तो लें उसे उतार।

आवश्यकता थी न मुझे कुछ
है या होगी कभी न देव !
यह प्रदान कर दें उसको
जो संत इसे चाहें अतएव।
संत हुए हतप्रभ, सोचा
"मन में ही ऐसा भक्त महान्
मैंने देखा नहीं आज तक
हुई जहाँ तक है पहिचान।

इसे देखकर पुलकित होंगे
निश्चय स्वामी रामानन्द।
इसको शिष्य बना लेंगे वे
मन में होगा परमानन्द।
ऐसा शिष्य जो कि माया ममता से
रहता इतनी दूर।
जिसमें भक्ति सहज प्रभु की है,
सेवा में रत है भर पूर।"

गान सुना रैदास भक्त का,
उसमें थी करुणा की टेर।
प्रेमानन्द, प्रभावित थे,
पर वे ठहरे थोड़ी ही देर।

# पाँचवाँ सर्ग

यह काशी है, ज्ञान-ध्यान की खान निराली,
जिसने सेवन किया, मुक्ति क्षण भर में पा ली।
मंगलमय है तीर्थ, शोक-सन्ताप विनाशी,
सब पुण्यों की राशि, भैरवी-भूषित काशी।

डपानि भैरव सदा,
शोभित जिनके साथ हैं,
श्वनाथ गिरिजा सहित,
उस नगरी के नाथ हैं॥

सुरसरि की है धार, हार हीरक सो झूली,
सिकता-कण ने विखर, स्वर्ग-श्री मानो छूली।
बड़े घाट है बंधे, स्नान-हित भीड़ बड़ी है,
दिशा दिशा में मंत्र-पाठ की लगी झड़ी है।

हल-पहल है इस तरह
मची भक्ति की लूट है।
नान करे कोई कहीं,
इसकी सबको छूट है॥

कण्ठों के हैं शब्द इस तरह मिले-जुले हैं,
सुन पड़ते हैं नहीं, स्पष्ट इस तरह घुले हैं।
'जै शंकर' 'जै शंभु' नाद हो रहा बड़ा है,
किया किसी ने स्नान, भिखारी पास खड़ा है।

ससे थोड़ी दूर पर,
विश्वनाथ मन्दिर सजा।
ड़ा भक्त-समूह जब,
मन्दिर का घंटा बजा॥

इस मन्दिर को छोड़, एक मन्दिर है
स्वर्ण कलश है संगमरमरी कोट स
श्रीनारायण का श्वेत रत्नमय विग्रह
सज्जित है जिस भाँति व्योम में पूर्ण सु
वैष्णव-जन का केन्द्र है,
किन्तु अभी पट बन्द हैं।
गहरी ध्यान समाधि में
स्वामी रामानन्द हैं॥
स्वामी रामानन्द संत हैं निस्पृह त्य
दर्शन करके भक्त मानते हैं बड़ भा
श्री रामानुज-भक्ति-पंथ के हैं अनुय
श्री नारायण-भक्ति जनों के सम्मुख गा
उनके बारह शिष्य हैं
जो कि भक्त में श्रेष्ठ हैं।
कौन करे चिन्ता कि वे
अति कनिष्ठ या ज्येष्ठ हैं॥
रामायण अध्यात्म-पाठ वे स्वर से क
रामभक्ति के भाव, हृदय में सुन्दर भर
राम कौन हैं, ब्रह्म रूप से सदा विह
लीला करने हेतु रूप नाना वे धर
ऐसे प्रभु की भक्ति भव—
सागर में ही नाव है।
कलियुग में प्रभु-भजन का,
अद्भुत पुण्य प्रभाव है॥
राम एक है, शक्ति रूप हैं जननी सी
क्या रावण से हुई एक भी क्षण भयभीत
पातिव्रत का तेज दीप्त था अंग अंग
राम नाम की गूंज साँस की थी तरंग

रावण का वह क्रोध था,
या उसका ही नाश था।
सीता के दृढ़ धैर्य का
साक्षी यह आकाश था॥

राम शक्ति में तपे भक्त लेते थे दीक्षा,
देते थे सब भाँति भक्ति की कठिन परीक्षा।
कितने ही थे शिष्य जाति के या कुजाति के,
यों तो सुनते ज्ञान सभी जन भाँति भाँति के।

भक्तभाल के रचयिता-
कविश्री नाभादास थे।
स्वामी रामानन्द पर
लिख छप्पय सोल्लास थे॥

श्री रामनन्द रघुनाथ ज्यों द्वितिय सेतु जगतरण कियो।
अनन्तानन्द कबीर सुखा सुरसुरा पदमावत नरहरि,
पीपा भावानन्द रैदास, धना, सेन सुरसुर की नरहरि।
औरो शिष्य प्रशिष्य एकतें एक उजागर,
विश्व मंगल आधार, भक्ति दशधा के आगर।

बहुत काल वपु धारिकै
प्रणत जनन को पार दियो,
श्री रामानन्द रघुनाथ ज्यों,
द्वितिय सेतु जगतरण कियो।

एक दिवस जब उषाकाल की विमल घड़ी थी
नभ रंजित था और धरा पर शान्ति बड़ी थी
मलय समीरण मन्द जाहनवी छू कर आयी
पुष्पों की मृदु सुरभि सकल आश्रय पर छायी

स्वामी रामानन्द जी
पूजन कर ध्यानस्थ थे
मुख पर मृदु मुस्कान थी,
मन से पूरे स्वस्थ थे।

भक्त दर्शनों हेतु जुड़े थे, खुला द्वार
आये प्रेमानन्द हाथ में पुष्प-हार थ
आकर किया प्रणाम, और माला पहिना
स्वामी रामानन्द-अधर पर स्मिति थी छा

आँखें खोली और तब,
बोले प्रेमानन्द से।
स्वस्ति। बैठिए शब्द थे,
फूलों के मकरन्द से।

बोले प्रेमानन्द। निवेदन यह है स्वामी
यों तो आप सदैव भक्त के अन्तर्यामी
एक भक्त रैदास पास का ग्राम निवासी
उसकी इच्छा सदा दर्शनों की है प्यासी

भक्ति, भाव में अग्रणी,
स्वर कीर्तन में लीन हैं।
प्रभु के प्रेम पयोधि में,
उसकी आँखे मीन हैं।

प्रभु दर्शन के लिए खड़ा है मुख्य द्वार पर
लाया हूँ मैं इसे बना लो अपना किंकर
भक्ति-गान में सदा गूँजता हृदय-तार है
कवि भी है पर हाय ! जाति का चर्मकार है

सेवा में प्रस्तुत करूँ,
आज्ञा हो यदि आपकी।
दर्शन से ही दूर हो,
विषय ज्वाल भव-ताप की।

किंचित रामानन्द हँसे सुन बात विनय की
जैसे कलिका खिली प्रेम-परिपूर्ण हृदय की
थी उनकी मुस्कान या कि थी स्वर्णिम रेखा
कितना है वह धन्य कि जिसने उसको देखा।

कहा वत्स, यदि भक्त है,
किन्तु जाति से हीन है,
तो भी कुछ चिन्ता नहीं,
यदि प्रभु में वह लीन है।

प्रस्तुत उसको करो सुनूँगा बात हृदय की,
उसको दूँगा बाँह प्रेम परिपूर्ण अभय की।
उसकी प्रभु प्रति उठी हृदय में यदि पुकार है,
होगा मेरा शिष्य, भले हीं चर्मकार है।

तुमको है यह ज्ञात, ही
जुलहा संत कबीर है।
पर मेरा वह शिष्य है,
उसकी खिंची लकीर है।

जाति-पाँति तो भेद-भाव की उठी भीत है
मानवता के लिए एकता मधुर गीत है।
जागे शीघ्र समाज जो कि अति स्वार्थ सना है
प्रभु के सम्मुख एक सदृश सब की रचना है।

जाति-पाँति पूछे नहिं कोई,
हरि को भजै सो हरि का होई।

सुनकर प्रेमानन्द प्रेम में मगन हो गये
गुरु वाणी के चन्द्र हेतु वे गगन हो गये,
दौड़े शीघ्र सहर्ष द्वार पर फिर वे आये
साथ लिए रैदास महाप्रभु सम्मुख धाये।

चर्मकार रैदास थे,
पर वे भाव विभोर थे,
अश्रु भरे लोचन ललित,
देख रहे प्रभु ओर थे।

किया स-भक्ति प्रणाम दूर से मस्तक टे
बोला मैं हूँ दीन, बुरा मानें न कहे क
यह है मेरा भाग्य कि प्रभु के चरण विल
खाये मैंने सदा परिस्थितियों के झों

अब मैं पूर्ण सनाथ हूँ,
किन्तु हीन हूँ जाति से।
शरण गही है आपकी,
हाय ! तरूँ किस भाँति से ?

बोले रामानन्द कि कुछ भी हानि नहीं
प्रभु के सम्मुख किसी भाँति कुल-कानि नहीं
आओ, मेरे पास, यहाँ बैठो कुछ गा
तुम कवि हो तो भक्ति-पूर्ण निज काव्य सुनाओ

देखूं मैं किस भाँति है,
प्रभु के प्रति आराधना,
तुम जैसे प्रिय शिष्य हैं,
कवि कबीर, पीपा, धना।

प्रेम भाव में लीन संत रैदास खड़े
विह्वलता में नेत्र, चरण नख-बीच जड़े थे
अस्फुट स्वर में कहा : कि प्रभु कविता क्या जा
शब्द जोड़ना मात्र उसे मैं मन से मानूँ

आज्ञा है अब आपकी,
तो कहता हूँ एक पद।
एक लहर भर जानिए,
जब कि काव्य है एक नद।

जो तुम तोरो राम, मैं नहिं तोरौं,
तुम सों तोरि कवन सों जोरों।
तीरथ बरत न करौं अंदेसा,
तुमरे चरन कमल के भरोसा।
जहँ जहँ जाओ तुम्हारी पूजा,
तुम सा देव और नहिं दूजा।
मैं अपने मन हरि सों जोर्‌यो,
हरि सों जोरि सबन सों तोर्‌यो।
सबही पहर तुम्हारी आसा,
मन बच करम कहै रैंदासा।

अश्रु सहित थे नेत्र शब्द कंठस्थ रुके थे
रामानन्द समक्ष भक्त रैंदास झुके थे।
सुनकर पद रसपूर्ण हो गये विह्वल स्वामी
लगा कि वे थे पूर्ण भक्त के अन्तर्यामी।

हो प्रसन्न प्रिय शब्द वे,
बोले प्रेमानन्द से।
कविता सुनकर यह हृदय,
पुलकित है आनन्द से।

मेरे प्रिय रैंदास। तुम्हारी भक्ति ठीक है
और काव्य ही आत्म समर्पण का प्रतीक है।
हुए आज से शिष्य हमारे सम्मुख आओ,
मेरे कर से प्रभु प्रसाद तुम निर्भय पाओ॥

सुन वाणी रैंदास का—
झुका भक्ति से माथ था।
स्वामी रामानन्द का,
शिष्य-शीश पर हाथ था।

# छठा सर्ग

श्री रामानन्द मुदित थे,
रैदास शिष्य आते थे,
गुरु के समीप आसन पर
वे भक्ति-गान गाते थे।

शशि के समीप हो जैसे
कोई अति उज्ज्वल तारा
ऐसे रैदास वहाँ थे
गुरु से पा स्नेह सहारा

रैदास शिष्य से मिलकर
थे बहुत प्रसन्न कबीरा,
जैसे कि जौहरी के कर
लग जाये कोई हीरा।

थे धना जाट या पीपा,
उनके संग आते-जाते,
सब एक ढंग से मिल कर,
वे भक्ति-गीत थे गाते।

सब ऐसे मिले-जुले थे,
जैसे फूलों की माला,
वीणा पर जैसे बजता
है किसी राग का झाला

रैदास चर्मकारी से,
थे सब के काम चलाते,
कुछ चारपाइयाँ अच्छी
थे धना जाट ले आते।

चादरिया झीनी बीनी
आतीं कबीर के द्वारा,
पीपा जी देते सब को,
गाने के हेतु चिकारा।

इन चारों की जोड़ी थी
होती थीं धर्म-सभाएँ,
जैसे नभ को थामे हैं,
दृढ़ता से चार दिशाएँ।

इस भाँति कभी वरना या
कभी असी के तीरे,
थी भक्ति फैलती जाती
गरिमा से धीरे-धीरे।

काशी में ऐसी सुन्दर
थी भक्ति-पीठ संतों की
जो ध्यान खींचती रहतीं,
नगरी के श्रीमंतों की।

आते यात्री उत्सुक हो,
काशी की इसी पुरी में,
जैसे गति की गरिमा है,
पहियों से लगी धुरी में।

संतों की यही सभा थी
जैसे कि दूसरी गंगा,
आकर कृतार्थ होता था
साधु हो, या भिखमंगा।

श्री रामानन्द सभा का
ऐसा संचालन करते,
परिताप पाप श्रोता का,
वे एक निमिष में हरते।

रैदास संत फिर आकर
गाते थे मीठे स्वर में,
जैसे कोकिल का स्वर था,
वासन्ती प्रथम प्रहर में।

प्रभु-भक्ति और गायन में
रैदास प्रथम आते, थे।
सब लोग समय कु-समय में
उनको ही पा जाते थे।

इस भाँति लोकप्रियता का,
बाना धारण करते थे,
उनकी यश-गरिमा का ही
वे उच्चारण करते थे।

\+ \+ \+

था प्रथम, प्रहर काशी में,
सब ओर धूम छायी थी,
चित्तौड़ राज्य से कोई
झाली रानी आयी थी।

विस्तीर्ण लाव-लश्कर था,
पीछे उन रानी जी के,
सब श्रीमंतों के मिलकर
धन-वैभव थे सब फीके।

थी बड़ी भीड़ घाटों पर,
आयी उनके दर्शन को,
थे आस-पास के राजा,
वे भूले अपनेपन को।

कितने ही जन आये थे,
दक्षिणा-दान पाने को,
भिक्षुक थे कितने आये,
मिष्ठान आदि खाने को।

चारण कितने थे उनके,
जो यश विरुदावलि गाते,
मुट्ठी मुट्ठी भर भर के
वे स्वर्णराशि थे पाते।

हाथी पर बैठी रानी,
था स्वर्ण-रत्न सिंहासन,
जो उन्हें देख लेता था,
बढ़ती थी मन की धड़कन।

इतना सारा वैभव भी,
क्या संभव है इस जग में ?
कितनी सुन्दरता छायी,
रानी जी की रग-रग में।

अति शंखनाद होते थे,
तुरही बजती क्षण-क्षण में,
जैसे कोई उत्सव हो,
काशी जी के कण-कण में।

धीरे-धीरे रानी की
गंगा-तट गयी सवारी,
रानी के पहले उतरे,
उनके जो थे दरबारी।

नीचे भू पर मखमल के
थे रुचिर पाँवड़े डाले,
दोनों ही ओर स-जग थे,
प्रहरी सब भाले वाले।

फिर चार नारियों के ही
हाथों का लिए सहारा;
हाथी से उतरी रानी,
गूंजा जय-जय का नारा।

धीरे-धीरे बढ़कर रानी तक,
पंडित जन आगे आये,
गंगा जी की पूजा में,
कितने ही मंत्र सुनाये।

फिर रानी ने फूलों में,
रख रखकर रत्न चढ़ाये,
जैसे गंगा के कर में
आभूषण बहुत सजाये।

फिर मंत्र-पाठ होते ही,
रानी उतरीं शुचि जल में,
स्वर्णिम अलिनी मुख धोये,
जैसे कि पुष्प-परिमल में।

फिर बार बार गंगा में
डुबकी ले ले कर रानी,
निकली जैसे सागर से,
शुभ लक्ष्मीगुण की खानी।

फिर परदे के मंडप में,
बदले सब कपड़े गीले,
फिर पहिने रेशम के पट,
थे रंग-बिरंग सजीले।

देवी वे स्वर्गपुरी की,
नव आभूषण से थीं लगतीं।
पटकी सुन्दर फहरन से
वे दिशा-दिशा को रंगती।

जयघोष सहित वे निकलीं
देवी की पूजा भी की
उनके मुख पर अंकित थी
मुस्कान मनोहर नीकी।

फिर कोषाध्यक्ष बुला कर
दी दान-दक्षिणा जी भर,
बाँटे कितने आभूषण,
बाँटे कितने ही अम्बर।

फिर पैरों पैरों चलकर
वे विश्वनाथ के मन्दिर—
आयीं। सेवकगण आगे,
पथ बना रहे थे फिर फिर।

यों भीड़ बड़ी होती थी,
मन्दिर में प्रतिक्षण, प्रतिदिन
पर उस दिन तो दर्शक थे,
अपनी संख्या में अनगिन।

रानी ने प्रीति सहित अति,
जा किया स-भक्ति शिवार्चन
उनके नव उपहारों से
थे सुखी वहाँ के जन-जन।

रानी ने स्वर से शिव की
पूजा में गीत सुनाये,
जैसे उनके गायन में
अनुरागी राग समाये।

श्रद्धा समेत उठ रानी,
मन्दिर के बाहर आयीं,
सारी विधियाँ पूजन की,
उनके मन को थी भायीं।

हाथी ने सूंड उठाकर,
उनका स्वागत जतलाया,
तब चतुर महावत ने भी,
भू पर हाथी बिठलाया।

सखियों समेत तब रानी,
हाथी पर सिंहासन के—
स्वर्णिम आसन पर बैठीं,
दृग हुए ललित खंजन के।

पूछा सब संतों में है
वह कौन सौम्य सब लायक ?
प्रभु की सेवा में रत है,
उनकी महिमा का गायक ?

उत्तर में यही बताया
रैदास संत हैं ऐसे,
वे चर्मकार तो हैं, पर
लक्षण सब संतों जैसे।

उनकी प्रतिभा पर स्वामिनि !
श्री रामानन्द चकित हैं,
वे भक्त, संत, कवि सब हैं,
इस काशी में हैं चर्चित।

रानी झाली के मुख पर
मुस्कान एक क्षण खेली,
'तो वहीं चलो।' हाथी ने
वह दिशा शीघ्र ही ले ली।

धन-वैभव की यह माया,
निर्धन के द्वार चली थी,
जैसे काँटे के पद पर,
चढ़ने को चली कली थी।

कुछ दूर पहुँच जाने पर
सुन पड़ी भजन की लय भी,
रैदास सदन है, सब को
हो गया शीघ्र निश्चय भी।

टूटे छप्पर के आगे,
रानी का गज ठहरा था,
रानी उतरी, उसका मन
कितना उत्साह-भरा था।

रैदास हुए विचलित थे,
यह देख राजसी सेना,
लोना से बो़ले—लोने !
यह गोरखधन्धा है ना ?

राजा रानी से हमको,
क्या कुछ है लेना-देना ?
हैं राम हमारे राजा,
खाते हैं नोन-चबेना।

इतने में झाली रानी
आयी छप्पर के आगे,
करके प्रणाम बोली—प्रभु !
हैं भाग हमारे जागे।

झाली रानी हूँ, मेरा
चित्तौड़ राज्य है भारी,
केवल काशी-दर्शन की,
की थी मैंने तैयारि।

पर सुना यहाँ मैंने है
हे सन्त ! आप अनुपम हैं,
प्रभु-भक्ति, काव्य रचना के
मंगलमय शुभ संगम है।

इसलिए आपकी शिष्या,
बनने की है अभिलाषा,
प्रभु के समक्ष आयी हूँ,
लेकर ऐसी ही आसा।

रैदास बड़े विस्मय से
थे देख रहे रानी को,
सपना है, या सच है, क्या
कहिए इस हैरानी को ?

वे उठे और फिर बोले—
मैं चर्मकार हूँ देवी।
इतना बस, समझें, मैं हूँ,
निज गुरु-चरणों का सेवी।

मैं यही निवेदन कर दूं,
दुविधा मत मन में लावें,
श्री रामानन्दाश्रम है
उस ओर, वहाँ पर जावें।

वे गुरू हैं, उनकी शिष्या,
बन कर सच्चा पथ पावें,
हम तो सेवक हैं, गुरु के
गौरव को क्यों ललचावें ?

(राजसी वस्त्र रानी के,
वे देख देख सकुचाते,
कुछ खींच फटे वस्त्रों के,
वे अपना अंग छिपाते।)

पर रानी मन में दृढ़ थी,
बोली वह कोमल बानी,
हे संत ! आपकी शिष्या
ही बनने की है ठानी।

संकोच आपको क्यों हो ?
मैं तो गुरु मान चुकी हूँ,
जो सुना, यहाँ आकर मैं
सब कुछ भी जान चुकी हूँ।

चित्तौड़ नगर है चलना,
कर लें प्रभु ! सब तैयारी,
पत्नी भी साथ चलेंगी,
माली संग हो फुलवारी।

इतना कह रानी के मुख—
पर मुस्कान खिली थी,
जैसे कि कमल के दल से—
रवि की नव किरण मिली थी।

\+ \+ \+

चित्तोड़ नगर है इतना शोभाशाली,
गौरव गाथा है इसकी विस्मय वाली,
वीरों ने व्रत अपना सम्पूर्ण निभाया,
मिट गये किन्तु अपना मस्तक न झुकाया।

दृढ़ दुर्ग–कि जिसमें पूर्ण शौर्य संचित है,
कोई योद्धा नहीं जो कि यश-वंचित है,
है सप्त कोट का दुर्ग कठिन है घेरा,
दुंदुभि-ध्वनि से होता है वहाँ सवेरा।

है आज दुर्ग में पूजित हुई भवानी,
आने वाली हैं, अपनी झाली रानी।
तोरण अनेक हैं, सजे हुए पथ सारे,
नव रत्न-राशि से जगमग हैं चौबारे।

मंगल कलशों को शीश रखे बालाएँ,
जैसे कि सूर्य से शोभित चन्द्र-कलाएँ
है सारा दुर्ग नवीन कि यौवन आया,
जैसे सब ने नव जीवन-मंत्र जगाया।

सम्मुख भारी गज-यूथ झूमते आते,
हैं गणपति के हैं रूप, हृदय को भाते,
है मध्य भाग में ऐरावत-सा हाथी,
मखमली झूल से बढ़ी हुई सुषमा थी।

उसपर थे श्री रैदास और थीं लोना,
जिनकी शोभा थी अतुल, स्वरूप सलोना,
उनके सिर पर था छत्र स्वर्णमय सुन्दर,
थीं चँवर डुलाती हुई दासियाँ सादर।

उनके समीप हाथी पर झाली रानी
श्रद्धा-विश्वास समीप भक्ति की बानी,
था शंखनाद फिर तूर्य-नाद का गुंजन
जय जय की ध्वनि से प्रहसित-मुख था जन जन।

हर चौराहे पर विमल आरती होती,
विखराये जाते राज-मार्ग पर मोती,
जब मुख्य महल पर झाली रानी आयी
अपने कर में आरती सप्रेम सजायी।

रैदास और लोना के सम्मुख हो नत
आरती उतारी लेकर चन्दन अक्षत,
बिठलाया उनको स्वर्ण-मंच पर सादर,
मस्तक पर लेपन किया मलयुत केसर।

फिर यह कहकर उपचार कर दिये सा
रैदास संत हैं अब से गुरू हमा
बीता सारा ही मास बड़े उत्सव मे
रैदास संत के प्रति श्रद्धा थी सब में

फिर निर्मित मन्दिर हुआ साज सब साजे,
उस मन्दिर में श्रीकुम्भन श्याम विराजे,
उसके समीप वनवाया एक सरोवर,
जिसके जल में विकसित होते इन्दीवर।

रैदास संत के चरण चिन्ह जिस भू प
बनवाया स्मति का चिन्ह उसी के ऊपर
कुछ और दिवस वे रहे वहाँ कीर्तन क
फिर लौटे पत्नी सहित समुद अपने घर

# सातवाँ सर्ग

देखो, श्री रैदास संत प्रभु-भक्ति-भाव मंडित हैं,
उनके पद पर शीश झुकाते बड़े शास्त्र-पंडित हैं।
प्रभु के प्रति जो हुए समर्पित, उनकी जाति न कोई,
लोक लाज, पद की मर्यादा सभी उन्होंने खोई।

जब से वे चित्तौड़-नगर से आये, गुरुपद पाकर,
तब से जैसे हुए भक्ति के वे गहरे रत्नाकर।
नहीं समाया अहंकार का भाव लेश भी मन में,
जैसे हरा-भरा तरु हो—पर वह हो निर्जन वन में।

धन वैभव सब वहीं त्याग कर लौटे बन वैरागी,
स्वर्ण-रत्न की विपुल राशि प्रभु की सज्जा में त्यागी।
जैसे वे पहले थे, वैसे ही बनकर घर आये,
किन्तु न जाने तब से कितने प्रभु-पति छन्द बनाये।

भक्ति-साधना तो है, पर अपना व्यवसाय न छोड़ा,
दिन में नित्य बना लेते हैं वे पनहीं का जोड़ा।
दे देते हैं किसी सन्त को मूल्य न कोई लेते,
कभी कभी अपनी निर्धनता पर ही वे हँस देते।

लोना भी उनके पीछे रहती है लघु छाया-सी,
प्रभु—सेवा में लीन, रही वह नाम-मात्र जायासी।
वह रखती है चर्म ठीक कर अपने पति के आगे,
चूहे काट न डालें, इससे वह सम्हालती धागे।

राँपी, कील आदि की प्रतिदिन करती है रखवाली,
उसने अपने धर्म-कर्म की पावनता थी पा ली।
रात्रि समय वह पति के स्वर में स्वर दे कीर्तन करती,
वायु-तरंगों पर उनकी स्वर-लहरी लहर लहरती।

पति के रचे सभी पद उसको वे कंठस्थ स-लय थे,
भक्ति-भावना से परिपूरित, उनके युगल हृदय थे ।
जो घटना घटती जीवन में उस पर पद बन जाता,
सदा जोड़ते अपने जीवन से वे प्रभु का नाता ।

झाली रानी के द्वारा जब था उनका अभिनन्दन,
छत्र-चंवर उनके सिर था, माथे पर केसर चन्दन ।
याद उन्हें चित्तौड़ नगर की आयी बीथी-बीथी,
उसको प्रभु की कृपा समझ कर, उस पर रचना की थी

ऐसी लाल तुझ बिन कौन करे ।
गरीब निवाज गुसँइयाँ मेरे माथे छत्र धरै ।। टेक ।।
जाको छूट जगत को लागै, तापर तू ही ढरै,
नीचहिं ऊँच करै मेरा गोविन्द, काहू ते न डरै ।
नामदेव, कबीर, तिलोचन, सधना सैन तरैं,
कहि रविदास सुनहु ऐं संतहु हरि जी मे सब सरै ।।

उनके मन में आता था प्रभु का औदार्य अनूठा,
माया के कारण ही उनसे रहता यह जग रूठा ।
किस प्रकार माया से हो, मानव-मन का छुटकारा,
कैसे इस भव सागर का मिल जावे कूल-किनारा !

कभी कभी अपने ही को वे धिक्कारा करते थे,
क्यों न स्वयं निज जीवन का वारा-न्यारा करते थे ।
है अपार प्रभु की महिमा, वे कैसे उनको जाने,
प्रभु कैसे इस चर्मकार को अपना कर पहिचाने ?

कूप भरयो जस दादुरा, कछु देस-विदेस न बूझ ।
ऐसो मेरो मन विषय भोहिया, कछु आर-पार न सूझ ।।
सकल भवन के नायक, एक दिन दरस दिखाई ।। टेक ।।
मलिन भई मति माधवा, तेरी गति लखिन जाई ।
करहु कृपा भ्रम चूकई, मोंहि सुमति देहु समझाई ।।
योगीश्वर पावहिं नहिं तुम कथ पार अपार,
प्रेम-भक्ति के कारणें कहु रैदास चमार ।।

ो विद्या जग को मिलती है, उसमें सार कहाँ है ?
ान योग की मीमांसा में, प्रभु का प्यार कहाँ है ?
हंकार का मद सब को है, हृदय निखार कहाँ है ?
राकार तो वर्तमान है, पर साकार कहाँ है ?

इसकी शिक्षा तो होती है, साधु-संग के द्वारा,
हरि की तो चटसाल वहीं है, वहीं प्रेम की धारा ।
गुरु शिक्षक है जो देता है प्रतिपल हमें सहारा,
गाऊँ उनके गुण में निशिदिन, वही एक ध्रुव तारा ।

वलि मन हरि चटसाल पढ़ाऊँ ।।
ुरु की साटि, ज्ञान का अक्षर, बिसरत सहज समाधि लगाऊँ ।। टेक ।।
ेम की पाटी, सुरति करि लेखनि, ररां मझ लिख आंक दिखाऊँ ।
इहि विधि मुक्त भये सनकादिक, हृदय विचार प्रकास दिखाउँ ।
कागद कँवल मति मसिकर, निर्मल बिन रसना निसिदिन गन गाऊँ ।
कह रैदास राम भजि भाई, सन्त साखि दै बहुरि न आउँ ।।

कितना यह संसार हो गया अपने सुख में माता,
सत्संगति से रहा न उसका लेश-मात्र भी नाता ।
अपनी अपनी ढपली पर वह अपना राग सुनाता,
उसे न चिन्ता, कैसे वह इस जग में आता-जाता ।।

यदि वह प्रभु की शरणहेग तिो नश्चय सद्गति ह
मग-जल यदि सुरसरि से मिल ले, उसकी क्या क्षति हो
संगति से ही सुमति रूप में, उसकी दुर्मति ह
ओछी जात बनेगी ऊँची, यदि प्रभु से रति होग

प्रभु जी, संगति सरन तुम्हारी
जग जीवन राम मुरारी।
गली गली को जल बहि आयो,
सुरसरि जाय समायो,
संगति के परताप महातम,
नाम गंगोदक पायो ॥
स्वाति-बूंद बरसै फनि ऊपर,
सीस विषै होइ जाई,
वही बूंद कै मोती उपजै,
संगति की अधिकाई ॥
तुम चन्दन हम रेंड बापुरे,
निकट तुम्हारे आसा,
संगति के परताप महातम
आवै वास सुवासा ॥
जाति भी ओछी करम भी ओछा,
ओछा करुब हमारा,
नीचे से प्रभु ऊँचो कियो है,
कह रैदास चमारा ॥

भाँति भाँति के पद गाते थे राम-भक्ति में भाते,
जैसे जग के मरु में अपनी सुधा-धार बरसाते।
लोना उनके स्वर में अपना स्वर थी सदा मिलाती,
जैसे दीपक की लौ में रहती है दीपक-बाती।

अपने चर्म चक्षुओं से वे राम-रूप की झाँकी
चाह रहे थे, जैसी उनके मन ने प्रतिपल आँकी।
कभी उभरती उनके मन में श्याम-छटा छवि बाँकी,
उनकी सहज समाधि बीच उतरी प्रतिभा सुषमा की ।।

दरसन दीजै राम दरसन दीजै।
दरसन दीजै राम, विलम्ब न कीजै ।।
दरसन तोरा, जीवन मोरा,
बिन दरसन क्यों जीवै चकोरा।
माधो सतगुर सब जग चेला,
अब बिछुरै, मिलै न दुहेला।
धन जीबन की झूठी आसा,
सत सत भाखै जन रैदासा ।।

रैदास रात न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरि जी सुमरिये, छाँड़ि सकल प्रतिवाद ।।

हरि-सा हीरा छांड़ि कर
करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे,
सत भाषे रैदास ।।

# उपसंहार

वाणी की अभिनव विभूति जब बरसी स्वर
लहरी काव्य तरंग भावना के सागर मे
नभ गंगा की नयी प्रभा छिटकी अम्बर
नव प्रभात की किरण सजी अक्षर अक्षर मे

भक्त-भावना में उठी,
एक लहर उल्लास की।
प्रात-समीरण सी बही,
है बानी रैदास की।

होकर भी असहाय, सहायक स्वयं हो ग
पाकर अपने राम उसी में आप खो गये
ऊसर में भी शस्य सम्वलित बीज बो ग
मन का कल्मष, स्नेह-वारि से सहज धो गये

जिसकी है जीवन-कथा,
अमर कथा इतिहास की।
पारस से अब तक सजी
है छानी रैदास की।

शास्त्र-चिन्तकों ने न पार जिसका था पाय
उसका ही था कंठ कंठ में राग समाया
प्रभु-रहस्य को खोज, धर्म का मर्म बताय
जन भाषा में मधुर काव्य का स्रोत बहाया

भ्रमित भावना भूल कर,
भरी सांस विश्वास की।
भक्ति-भावना देश ने
पहिचानी रैदास की।

# परिशिष्ट-१

## 'परम सन्त रैदास' : एक मूल्यांकन

मध्यकालीन सन्त परम्परा में रैदास (रविदास) का नाम समादरणीय है। कबीर की भाँति ही रैदास भी स्वामी रामानन्द के शिष्य थे। वे पढ़े-लिखे नहीं थे और जाति से चर्मकार थे, तथापि भक्ति के महोदधि में डूब कर आध्यात्मिक भाव-रत्नों की प्राप्ति उन्होंने की थी। भक्त रैदास प्रभु-प्रेम में तन्मय हो जाते थे, तो उनके मुख से निसृत वाणी सहज ही काव्यमयी हो उठती थी। वे उत्कृष्ट कोटि के सन्त, भक्त और कवि थे। 'परम सन्त रैदास' में समर्थ, कवि डॉ० रामकुमार वर्मा ने उसी सरल-चित्त सन्त के जीवन की झाँकी प्रस्तुत की है। स्वयं कवि के शब्दों में यह रचना 'एक सन्त कवि के प्रति मेरी श्रद्धांजलि है।'

'परम सन्त रैदास' सात सर्गों में निबद्ध एक खण्डकाव्य है, जिसके आरम्भ में कवि का 'समर्पण' और 'प्रस्तावना' तथा अन्त में 'उपसंहार' उसकी सोद्देश्यता को सुस्पष्ट कर देते हैं।

**कथा-सार** :—प्रस्तावना में कवि ने आज के जाति-पाँति के भेद-भाव की रूढ़ि से ग्रस्त समाज की दशा पर अपनी व्यथा व्यक्त करते हुए इस भेद-भाव को निरर्थक ठहराया है और रैदास जैसे प्रेममय जीवन को अपनाने की सत्प्रेरणा दी है।

सन्त रैदास का आविर्भाव-काल स० १३८८ से १५१८ के बीच माना जाता है। काशी के निकट मनडूर नामक ग्राम में चर्मकार दम्पति रघू और घुरबनी के यहाँ माघ मास की पूर्णिमा को रविवार के दिन जन्म लेने के कारण बालक का नाम रविदास रखा गया जो रैदास के नाम से प्रचलित हुआ। बचपन से ही रैदास की रुचि पैतृक व्यवसाय में न होकर भगवद् भक्ति में विशेष थी। इसी कारण पिता से प्रताड़ित होकर उन्हें अपनी पत्नी लोना सहित अलग रहना पड़ा। रैदास पर भक्ति का रंग और गहरा चढ़ता गया। लोना भी पति की राह पर सच्ची सहधर्मिणी की भाँति चल रही थी। फलतः व्यवसाय घाटे में चलने लगा। फाकों की नौबत आने पर भी रैदास की भक्ति और सन्त जनों को बिना मूल्य जूते पहनाते रहने के क्रम में कोई अन्तर नहीं आया।

एक दिनसन्त प्रेमानन्द रैदास के घर पर पधारे। रैदास की सरलत आतिथ्य-सत्कार, निर्मल भक्ति भावना से प्रभावित प्रेमानन्द ने उनका अर्थ संकट दूर करने को उनके मना करने पर भी एक पारस पत्थर उनके घ छोड़ दिया। निर्लोभी सन्त रैदास को माया से भला क्या लगाव। उन्होंने उ छुआ तक नहीं। प्रेमानन्द दोबारा आये तो रैदास की निस्पृहता और त्याग प्रभावित हुए बिना न रह सके। वे उन्हें साग्रह सुख्यात सन्त स्वामी रामानन् के पास ले गये जिन्होंने रैदास की भक्ति-साधना से प्रभावित होकर अत्यन्त स्नेह भाव से उन्हें अपना शिष्य बना लिया। रैदास भी कबीर, धना, पीप आदि की सन्त-मण्डली के सदस्य हो गये।

रैदास की ख्याति फैलने लगी। उसी समय चित्तौड़ की झाली रानी काशी दर्शन को पधारीं। उन्होंने रैदास का शिष्यत्व ग्रहण किया और चित्तौ ले जाकर उनका भव्य स्वागत तथा अभिनन्दन किया। रैदास कीचड़ मे कमलवत् उस वैभव के बीच से लौट कर पुनः काशी आ गये और पूर्ववत् ही भगवद्भक्ति और पैतृक व्यवसाय में लगे रहे। तन्मय होकर वे हरि-भक्ति के पदों का गान करते हुए संसार को प्रेम का अमर सन्देश देते रहें।

अन्त में 'उपसंहार' के अन्तर्गत कवि राममय संत रैदास के प्रति अपने श्रद्धा-सुमन अर्पित करता है।

**कथा वस्तु** :—रैदास के जन्म से लेकर सन्त कवि के परम भक्त रूप को प्रस्तुत करने तक की कतिपय प्रमुख घटनाओं को लेकर इस खण्ड काव्य का कथा-पट बुना गया है। कवि ने अप्रामाणिक और जनश्रुतियों और चमत्कारों को स्थान न देकर कथावस्तु को पूर्णतः स्वभाविक और विश्वसनीय बनाये रखने का स्तुत्य प्रयास किया है। कथा-क्रम का विकास सहज स्वभाविक रूप से हुआ है और अन्त में रैदास के परम सन्त रूप का सम्यक् प्रभाव पाठक पर छोड़ता है। 'घटनाओं' का सुगुम्फित रूप कथानक में कहीं भी शैथिल्य नहीं आने देता, अतः क्या पाठक के मन को बाँधे रखने में पूर्ण समर्थ है। संवादों तथा घटनाओं के नाटकीय प्रस्तुतीकरण ने 'परम सन्त रैदास' की कथावस्तु को अत्यन्त रोचक और प्रभावपूर्ण बना दिया है। मार्मिक स्थलों को विस्तार देना भी कवि भूला नहीं है। सफल खण्डकाव्य की अपेक्षाओं के अनुरूप इस कृति में प्रबन्धत्व का सम्यक् निर्वाह हुआ है।

**वस्तु-वर्णन**—'परम सन्त रैदास' में जहाँ भी अवसर मिला है, कवि ने डकाव्य की संकुचित सीमा में भी, चित्तोपम वस्तु-वर्णन प्रस्तुत किये हैं। ास का जन्मोत्सव, चर्मकार का व्यवसाय, काशी नगरी, झाली रानी का शी-आगमन और पूजन, रामानन्द की सन्त सभा, चित्तौड़ नगरी और ास का अभिनन्दन समारोह आदि नाना वर्णन इनके स्पष्ट प्रमाण हैं, था—

"सम्मुख भारी गज-यूथ झूमते आते,
हैं गणपति के ये रूप, हृदय को भाते,
है मध्य भाग में ऐरावत-सा हाथी,
मखमली झूल से मढ़ी हुई सुषमा थी।
उस पर थे श्री रैदास और थीं लोना,
जिनकी शोभा थी अतुल, स्वरूप सलोना,
उनके सिर पर था छत्र स्वर्णमय सुन्दर,
थीं चंवर डुलाती हुईं दासियाँ सादर।"

प्रस्तुत खण्डकाव्य में प्रकृति-वर्णन अपेक्षाकृत कम ही है, तथापि दो-एक स्थलों पर प्रकृति की सलोनी झाँकी देखने को मिल ही जाती है। उदाहरणार्थ—

"एक दिवस जब उषाकाल की विमल घड़ी थी,
नभ रंजित था और धरा पर शान्ति बड़ी थी,
मलय समीरण मन्द जाह्नवी छूकर आयी,
पुष्पों की मृदु सुरभि सकल आश्रम पर छायी।"

**शील-निरूपण**—सन्त कवि रैदास इस खण्ड काव्य के धीर प्रशान्त नायक हैं। वस्तुतः यह रचना भक्त रैदास के पावन चरित्र की काव्य-मन्दाकिनी है। रैदास परम भक्त, दृढ़ संकल्पी, अतिशय विनयी, निस्पृह, त्यागी, अक्रोधी और निश्छल हृदय के सन्त कवि हैं। उनके चरित्र की इन विशेषताओं को कवि ने उनके बचपन से ही उभारते हुए नाना घटनाओं के मध्य से शनैः शनैः बड़े कौशल के साथ पूर्ण विकास तक पहुँचाया है। कवि ने पुस्तक की भूमिका 'स्वस्तिका' में कहा है—"परम संत रैदास का जीवन भक्ति की भागीरथी से पवित्र भावनाओं से भूषित था।" निश्चय ही, खण्डकाव्य में कवि अपने चरित्र-नायक को इसी रूप में प्रस्तुत करने में सफल हुआ है। अन्य पात्रों में रैदास की माता वात्सल्यमयी सरल हृदया नारी के रूप में और उनके पिता दुनियादारी

में पड़े सामान्य गृहस्थ के रूप में सामने आते हैं। स्वामी रामानन्द का च
रामभक्ति परम्परा के लोक विश्रुत महासंत के रूप में ही प्रस्तुत किया
है। स्वामी प्रेमानन्द भी अपने सहज लोक मंगलकारी सन्त चरित्र से प्रभा
करते हैं। झाली रानी धर्मप्राण महिला के रूप में सामने आती हैं। क
धना, पीपा आदि सन्तों की झांकी भी कवि ने थोड़े से शब्दों में बड़े स
रूप में दे दी है। इस प्रकार, शील-निरूपण की दृष्टि से यह खण्ड
पूर्णतः सफल बन पड़ा है। वस्तुतः 'परम संत रैदास' चरित्र-प्रधान खण्ड
ही है।

**रस-योजना**—भक्त रैदास के पावन चरित्र के इस काव्यात्मक आ
का अंगी रस शान्त है। पूरा खण्डकाव्य ही शान्त रस की अजस्र धारा
रैदास की माता के प्रसंग में वात्सल्य का हल्का, परन्तु प्रभावपूर्ण संस्पर्श
मिल जाता है।

**संवाद-सौष्ठव**—प्रस्तुत खण्डकाव्य का एक प्रमुख वैशिष्ट्य है इ
संवाद-सौष्ठव। कवि प्रवर डॉ० रामकुमार वर्मा सिद्ध हस्त नाटककार
इस खण्डकाव्य में उनका यह रूप उजागर हुआ है। संक्षिप्त, स
पात्रानुकूल, सरल, स्वाभाविक संवादों ने प्रस्तुत खण्डकाव्य को नाट
रोचकता एवं सरसता से सम्पन्न करने में विशेष योग दिया है।

**भाषा-शैली**—'परम संत रैदास' की भाषा अत्यन्त सरल, प्रवाह
भावानुरूपिणी एवं विषयानुकूल है। **संत रैदास के सरल** जीवन की भ
ही इस काव्यकृति की भाषा भी नितान्त अकृत्रिम और सादगी से स
जनभाषा है। कवि के शब्दों में उसने रैदास के भक्तिमय जीवन की भाग
की पवित्र भावनाओं को 'सरल कविता द्वारा एक खण्डकाव्य में' प्रस्तुत ि
है। निस्सन्देह, प्रसाद गुण (सरलता और सुबोधता) इस खण्डकाव्य की भ
की सबसे बड़ी विशेषता है।

प्रबन्ध शैली में प्रस्तुत 'परम संत रैदास' की शैली मूलतः इतिवृता
है, जिसमें चित्रोपमता, नाटकीय रोचकता एवं सहज प्रवाह है।

**छन्द-योजना**—विभिन्न सर्गों में कवि ने अलग-अलग छन्दों की योजना
है। तीसरे सर्ग के अन्त में छन्द-परिवर्तन हुआ है। बीच-बीच में जहाँ रै
की रचनाएँ दी गयी हैं, वहाँ भी छन्द बदल गया है। सम्पूर्ण छन्द-वि
विषयानुरूप सरस और प्रवाहमय है।

वंधान—भक्त रैदास के अकृत्रिम जीवन की भाँति ही कवि ने
य को भी सरल और भाव-सौन्दर्य सम्पन्न बनाये रखने की
ी है। इसीलिए वह अलंकारों के चामत्कारिक इन्द्रजाल से दूर
र भी, जैसे रैदास का जीवन नाना गुणों से विभूषित है, वैसे ही
लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह आदि अलंकारों ने स्वयं ही
ाह में आकर स्थान-स्थान पर इस काव्य कृति के भाव-सौन्दर्य का
किया है। यथा—

**श्लेष**—'राम' ने भी दीर्घ लघु के '**वर्ण**' साधे।

**उत्प्रेक्षा**—रात खिली **मानो** मिली स्वप्न भरी रम्य रश्मि।

**उपमा**—मेरे प्रभु तो **रत्न सदृश** हैं।

**रूपक**—उनका कर सत्संग नाचता रहा देर तक **हृदय-मयूर**।

**सन्देह**—भक्ति गान है **या** यह कविता का रूप है **या**
प्रभु की कृपा के हेतु प्रेम की पुकार है।

**रैदास-वाणी का प्रयोग**—बीच-बीच में रैदास की काव्य-रचनाओं का प्रयोग इस खण्डकाव्य की अपनी निजी विशेषता है। इससे काव्य की मूलभूत भक्ति भावना को तो वाणी मिली है, उसमें नाटक में प्रयुक्त गीतों जैसी रोचकता भी आ गयी है।

**उद्देश्य**—प्रस्तुत रचना का व्यक्त उद्देश्य रैदास के भक्तिमय सात्विक जीवन को उजागर कर आज के स्वार्थ-संकीर्ण बुद्धि प्रधान मानव समाज को भक्ति और प्रेम का पावन सन्देश देना है। कवि स्वयं स्वीकार करता है कि उसने भक्ति की भागीरथी से पवित्र भव्य भावनाओं से भूषित संत रैदास के जीवन को सरल कविता द्वारा प्रस्तुत किया है। किन्तु इसी ब्याज से कवि ने वर्तमान भारतीय समाज की एक ज्वलन्त समस्या, जातिगत भेद-भाव, के समाधान का भी स्तुत्य प्रयास किया है। निश्चय ही, कवि ने इसी उद्देश्य से चर्मकार रैदास के पवित्र जीवन को अपने काव्य का विषय बनाया है कि वह जातिगत भेद की मान्यता की असारता सिद्ध कर सके। अपने इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए अनेक स्थलों पर कवि जाति-पांति के भेद को स्पष्ट शब्दों में नकारता है और युगप्रवर्तक सन्त रामानन्द के श्रीमुख से घोषित कराता है—

"जाति-पांति तो भेद-भाव की उठी भीत है,
मानवता के लिए एकता मधुर गीत है।"
"बोले रामानन्द कि कुछ भी हानि नहीं है,
प्रभु के सम्मुख किसी भाँति कुल-कानि नहीं है।"

वस्तुतः "परम संत रैदास" में कवि का उद्देश्य रैदास के पवित्र जीवन की पृष्ठभूमि पर जातिगत भेद-भाव को झुठला कर मानवीय एकता का सन्देश देना है। कवि ने 'प्रस्तावना' में ही अपने इस मन्तव्य को व्यक्त कर दिया है। उसके अनुसार—

"जातिगत विद्वेष क्रम क्रम से बढ़ा है,
वर्णगत विष विषय नस नस में चढ़ा है।"

और इस जाति-वर्णगत वैषम्य को दूर करने के लिए कवि का स्पष्ट सुझाव है कि—

"जो कि गुरू हैं, साथ लघु को स्वयं बांधे
'राम' ने भी दीर्घ लघु के 'वर्ण' साधे।"

हरिजनों के प्रति कवि की गाँधीवादी दृष्टि इस काव्य के मूल में रही है—

"देख लो इतिहास, अपना देश देखो,
पूज्य बापू का दिया उपदेश देखो।"

कवि का प्रश्न है—

"आज हरिजन का जिन्हें है नाम देते,
क्या उन्हें हम काम भी अभिराम देते?"

तथा— "काट कर क्यों रख दिया यह अंग अपना,
देखते उसके बिना तुम कौन सपना?"

स्पष्ट है कि 'परम संत रैदास' जाति-वर्णगत विद्वेष के विषम विष का शमन करने के महद् उद्देश्य से प्रेरित खण्डकाव्य है। सन्त रैदास जैसे सात्विक भाव सम्पन्न प्रेममय जीवन की पीयूष धारा ही इस विष का उपचार है।

असंदिग्ध रूप से 'परम संत रैदास' डॉ० रामकुमार वर्मा का सशक्त सोद्देश्य खण्डकाव्य है, जो अपनी सादगी से आकृष्ट और महान् सन्देश से प्रभावित करता है।

प्रश्न ३. "आँखें बन्द करते हैं, श्याम पुतलियों के बीच,
राम-श्याम बार-बार आकर समाते हैं।"

रैदास की प्रेम-भाव-मग्नता पर संक्षेप में प्रकाश डालते हुए इन पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न ४. रैदास द्वारा पारस पत्थर ज्यों का त्यों लौटा देने पर उनके कौन-से गुणों से सन्त प्रेमानन्द प्रभावित हुए ?

प्रश्न ५. "बोले प्रेमानन्द निवेदन यह है स्वामी।"

स्वामी रामानन्द से प्रेमानन्द ने क्या निवेदन किया ?

प्रश्न ६. "एक दिवस जब ऊषाकाल की विमल घड़ी थी,
नभ रंजित था और धरा पर शान्ति बड़ी थी।
मलय समीरण मन्द जाह्नवी छूकर आयी,
पुष्पों की मृदु सुरभि सकल आश्रम पर छायी।"

इन पंक्तियों में प्रस्तुत-शोभा का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

प्रश्न ७. "जाति-पांति तो भेद-भाव की उठी भीत है,
मानवता के लिए एकता मधुर गीत है।"

स्वामी रामानन्द के इस कथन का भाव स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न ८. "जैसे पहले थे वैसे ही बनकर घर आये।"

चित्तौड़ जाने से पहले रैदास कैसे थे ? वहाँ कैसे हो गये थे ? 'वैसे ही बनकर' घर कैसे आये ? संक्षेप में समझाइए।

प्रश्न ९. संत प्रेमानन्द रैदास को पारस पत्थर क्यों देना चाहते थे ? रैदास ने क्या कह कर उसे लेना स्वीकार नहीं किया ?

प्रश्न १०. झाली रानी ने शिष्यत्व ग्रहण करने के लिए रैदास से किन शब्दों में निवेदन किया ?

प्रश्न ११. झाली रानी ने चित्तौड़ में रैदास और उनकी पत्नी का स्वागत अभिनन्दन किस प्रकार किया ?

प्रश्न १२ "प्रभु के प्रति जो हुए समर्पित उनकी जाति न कोई,
लोक-लाज, पद की मर्यादा सभी उन्होंने खोई।"

इन पंक्तियों का भाव स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न १३. चित्तौड़ में हुए भव्य अभिनन्दन को प्रभु की कृपा समझकर रैदास ने उस पर जो रचना लिखी थी उसके भाव अपने शब्दों में व्यक्त कीजिए।

प्रश्न १४. "मंगल कलशों को शीश रखे बालाएँ,
जैसे के सूर्य से शोभित चन्द्र-कलाएँ,
है सारा दुर्ग नवीन कि यौवन आया,
जैसे सबने नव जीवन-मंत्र जगाया।"

इन पंक्तियों के काव्य-सौन्दर्य पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न १५. 'परम सन्त रैदास' के आधार पर सिद्ध कीजिए कि इस खण्डकाव्य में जाति-पांति का भेद मिटाने का आह्वान किया है।

**(द) निबन्धात्मक प्रश्न (उत्तर-सीमा १५० के २०० शब्द)—**

**प्रश्न** १. रविदास के यहाँ प्रेमानन्द के आगमन, उनके स्वाग पारस्परिक वार्तालाप का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।

**प्रश्न** २. पांचवे सर्ग के आधार पर काशी नगरी की विशेषता प्रकाश डालिए।

**प्रश्न** ३. झाली रानी के काशी आगमन, गंगा-स्नान और मन्दिरों वाले प्रसंग को अपने शब्दों में लिखिए।

**प्रश्न** ४. चित्तौड़ नगर और रैदास के पहुँचने पर वहाँ की घटन वर्णन कीजिए।

**प्रश्न** ५. "शास्त्र-चिन्तकों ने न पार था जिसका पाया,
उसका ही था कंठ-कंठ में राग समाया।
प्रभु-रहस्य को खोज, धर्म का मर्म बताया,
जन भाषा में मधुर काव्य का स्रोत बहाया।"

इन पंक्तियों के आधार पर सन्त रैदास के जीवन और व्यक्ति प्रकाश डालिए।

**प्रश्न** ६. 'परम सन्त रैदास' खण्डकाव्य की कथावस्तु संक्षेप में ि

**प्रश्न** ७. 'परम सन्त रैदास' खण्डकाव्य में जो प्रसंग आपको स प्रिय लगा हो, उसका विस्तृत वर्णन कीजिए।

**प्रश्न** ८. 'परम सन्त रैदास' खण्डकाव्य की रचना के पीछे कवि उद्देश्य है? सोदाहरण समझाइए।

**प्रश्न** ९. "परम सन्त रैदास का जीवन भक्ति की भागीरथी से भव्य भावनाओं से भूषित था।" खण्डकाव्य के रचयिता डॉ० रामकुम के इस कथन के आधार पर सन्त रैदास के जीवन पर प्रकाश डालिए

**प्रश्न** १०. खण्डकाव्य की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए 'प रैदास' की समीक्षा कीजिए।

